

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 3 अध्याय 22: कर्दम द्वारा देवहूति के पाणिग्रहण की स्वीकृति

14 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



सरस्वती के तट पर वर्षों तक कठोर एकान्तवास में रहने वाला एक ऋषि अब गृहस्थ बनने जा रहा है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन करने वाला एक सम्राट् एक कोमल क्षण के लिए केवल एक पिता बनने जा रहा है। इन दोनों के मध्य खड़ी है एक पुत्री, जिसने किसी के भी कुछ कहने से पहले ही अपना हृदय अर्पित कर दिया है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। तृतीय पुस्तक का द्वाविंश अध्याय उस दृश्य को पूर्ण करता है जिसे यह श्रृंखला कई अध्यायों से रच रही थी: दो सर्वथा भिन्न प्रकार की महानताओं का मिलन। पिछले अध्याय में सम्राट् स्वायम्भुव मनु ऋषि कर्दम मुनि के आश्रम गए थे तथा एक विस्तृत, उदार वाणी में सन्त के गुणों की इतनी प्रशंसा की थी कि कर्दम स्वयं भी अत्यन्त प्रभावित होकर उसी भाव में उत्तर देने लगे — मनु के राजत्व की प्रशंसा करते हुए तथा अन्ततः स्पष्ट स्नेह के साथ पूछते हुए कि इतने महान् सम्राट् को उनके शान्त वन-निवास तक क्या लेकर आया। अब मैत्रेय कथा को ठीक वहीं से पुनः आरम्भ करते हैं, जहाँ मनु को एक ऐसे प्रश्न का उत्तर देना है जिसे प्राप्त करना उन्हें उतना ही सकुचाने वाला लगता है जितना कर्दम को क्षण भर पहले उनकी अपनी प्रशंसा सुनना लगा था। आगे जो होता है वह सम्पूर्ण तृतीय स्कन्ध के सबसे कोमल तथा महत्त्वपूर्ण दृश्यों में से एक है: एक पिता का अपनी पुत्री को विवाह में अर्पित करने का प्रस्ताव, एक ऋषि की विचारपूर्ण तथा सशर्त स्वीकृति, दो राजसी कुलों की सम्पूर्ण उष्मा से सम्पन्न एक विवाह, तथा एक गृह-यात्रा जो शान्तिपूर्वक अपने भीतर भागवत के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण धार्मिक सूत्रों में से एक का बीज समेटे हुए है — क्योंकि यहाँ सम्पन्न होने वाला यह मिलन वही है जिससे सांख्य दर्शन के महान् आचार्य भगवान् कपिल समय आने पर जन्म लेंगे।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 3 (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: 22 (द्वाविंश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: ऋषि कर्दम द्वारा देवहूति के पाणिग्रहण की स्वीकृति
- मुख्य वक्ता: श्रीशुक (राजा परीक्षित के प्रति बाह्य कथावाचक, पूरे अध्याय में निहित), मैत्रेय (विदुर के प्रति आन्तरिक कथावाचक), स्वायम्भुव मनु, ऋषि कर्दम
- अध्याय के भीतर मुख्य श्रोता: विदुर, मैत्रेय की कथा सुनते हुए
- मुख्य स्थल: सरस्वती नदी के तट पर ऋषि कर्दम का वन-आश्रम; मनु की राजधानी बर्हिष्मती की ओर जाने वाला मार्ग
- मुख्य विषय: कर्दम की प्रशंसा के प्रति मनु का विनम्र उत्तर; उनकी पुत्री देवहूति का ऋषि से विवाह का औपचारिक प्रस्ताव; कर्दम की कृपापूर्ण तथा सशर्त स्वीकृति; विवाह तथा कन्यादान; बर्हिष्मती नगर के नामकरण की कथा सहित राजदम्पति की गृह-यात्रा; तथा मनु के दीर्घ तथा ईश्वर-केन्द्रित जीवन का समापन-सार
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 3, अध्याय 22, श्लोक 1–39 (गीता प्रेस क्रमांक)
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

प्रशंसा के समक्ष एक पिता की विनम्रता

अध्याय एक शान्त संकोच के भाव से आरम्भ होता है। मनु, जिन्हें अभी-अभी अपने राजत्व तथा चरित्र के लिए ऋषि की प्रशंसा से आप्लावित किया गया था, अनुभव करते हैं — भागवत के अनुसार — मानो एक ऐसे सम्मान से पकड़े गए हों जिसे उन्होंने न तो चाहा था और न ही जिसके पूर्णतः योग्य वे स्वयं को मानते थे। इस प्रशंसा को मात्र विनम्रता से टालने के बजाय, मनु कहीं अधिक ठोस उत्तर देते हैं: एक संक्षिप्त परन्तु गम्भीर ब्रह्माण्डीय धर्मशास्त्र का कथन, जो यह स्पष्ट करता है कि एक ब्राह्मण तथा एक क्षत्रिय एक-दूसरे का जो सम्मान करते हैं, वह क्यों उचित है। मनु बताते हैं कि वह विराट पुरुष, जो स्वयं वेद-स्वरूप हैं, ने अपने ही मुख से — तप, विद्या तथा योग (चित्त की एकाग्रता) से

सम्पन्न तथा विषय-भोगों से विरक्त — ब्राह्मणों को अपने स्वयं के अस्तित्व की रक्षा (वेदों के रूप में) के लिए प्रकट किया। उसी सहस्र-चरण-युक्त पुरुष ने ब्राह्मणों की रक्षा के लिए अपनी सहस्र भुजाओं से हमें (क्षत्रियों को) प्रकट किया। इसीलिए वे ब्राह्मण-कुल को उनका हृदय तथा क्षत्रिय-कुल को उनके बाहरी अंग (भुजाएँ) कहते हैं। प्रत्येक वर्ग दूसरे की रक्षा के लिए है, तथा दोनों अन्ततः उसी एक भगवान् की रक्षा के लिए हैं, जो स्वयं कारण भी है तथा कार्य भी, तथा फिर भी अपरिवर्तनीय बना रहता है।

अतो ह्यन्योन्यमात्मानं ब्रह्म क्षत्रं च रक्षतः ।

रक्षति स्माव्ययो देवः स यः सदसदात्मकः ॥ ४ ॥

ato hy anyonyam ātmānaṁ brahma kṣatraṁ ca rakṣataḥ rakṣati smāvyayo devaḥ sa yaḥ sad-asad-ātmakaḥ

अर्थ: “इसी कारण ब्राह्मण-वर्ग तथा क्षत्रिय-वर्ग एक-दूसरे की रक्षा करते हैं, तथा एक-दूसरे की रक्षा करते हुए वे अपनी ही रक्षा भी करते हैं — क्योंकि वह एक अविनाशी भगवान्, जो स्वयं कारण भी है तथा कार्य भी, इन दोनों के परस्पर सहयोग के माध्यम से ही यह रक्षा सम्पन्न करता है।” (स्कन्ध 3, अध्याय 22, श्लोक 4)

इस श्लोक में एक गहरी बात छिपी है जिसे भागवत-पाठक को शीघ्रता से नहीं बीत जाने देना चाहिए। भगवान् स्वयं व्यक्तिगत रूप से न तो ब्राह्मण-वर्ग की रक्षा हेतु उतरते हैं और न ही क्षत्रिय-वर्ग की; श्लोक स्वयं उन्हें “अव्यय” — अविनाशी तथा अचल — कहता है, फिर भी साथ ही उन्हें सम्पूर्ण अस्तित्व का कारण तथा कार्य दोनों बताता है। उनकी रक्षा संसार तक केवल उन्हीं वर्गों के पारस्परिक सहयोग से पहुँचती है जिन्हें उन्होंने स्वयं प्रकट किया है — ब्राह्मणों की विद्या राज्य के धर्म की रक्षा करती है, क्षत्रियों का बल ब्राह्मण-वर्ग की रक्षा करता है, तथा दोनों में से कोई भी दूसरे के बिना कार्य नहीं कर सकता। यही वह तर्क है जिसके आधार पर भागवत अन्यत्र भी भगवान् को “निर्विकार” — अपने स्वयं के किसी पृथक् प्रयास से रहित — कहता है: उनकी शक्तियाँ ही उनकी ओर से कार्य करती तथा सहयोग करती हैं, जबकि वे स्वयं उस गति के पीछे अपरिवर्तनीय साक्षी बने रहते हैं। संसार में अपने ही स्थान को — जो भी वह हो — उसी जीवन्त सहयोग के एक सूत्र के रूप में देखना स्वयं में उपासना का एक रूप है (श्लोक 3-4)।

इस ढाँचे को प्रस्तुत करने के बाद, मनु कुछ अधिक व्यक्तिगत ओर मुड़ते हैं: कर्दम के समक्ष बैठ पाने के अपने ही सौभाग्य के प्रति कृतज्ञता। ऐसा ऋषि, वे कहते हैं, उसके द्वारा सहज नहीं देखा जा सकता जिसने अपने मन को वश में नहीं किया है — तथा मनु स्वयं को न केवल उन्हें देख पाने के लिए, अपितु अपने ही सिर से उनके चरणों की पावन धूलि का स्पर्श कर पाने के लिए भी सौभाग्यशाली मानते हैं। उन्हें शिक्षा दी गई है, वे कहते हैं, तथा उन पर एक महान् अनुग्रह किया गया है; उन्होंने उत्सुक तथा खुले हृदय से कर्दम के मनोहर वचन सुने हैं। यह भूमिका-परिवर्तन का एक उल्लेखनीय क्षण है, जिस पर ठहरना उचित है: कुछ श्लोक पूर्व यह ऋषि ही थे जो सम्राट् की प्रशंसा कर रहे थे; अब यह पृथ्वी के सम्राट्, प्रत्येक राज्य के शासक, एक वनवासी तपस्वी के दर्शन को अपने जीवन का सबसे बड़ा सौभाग्य बता रहे हैं।



ऋषि की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा से संकुचित होकर, सम्राट् मनु मात्र विनम्रता से नहीं, अपितु ब्राह्मण-क्षत्रिय को भगवान् के हृदय तथा भुजाओं के रूप में वर्णित करने वाले एक ब्रह्माण्डीय धर्मशास्त्र से उत्तर देते हैं, तथा फिर स्वीकार करते हैं कि कर्दम का दर्शन उनके जीवन का सबसे बड़ा सौभाग्य है (श्लोक 1-7)।

एक राजा अपनी पुत्री का प्रस्ताव रखता है

इस प्रस्तावना के पश्चात् ही मनु अपनी यात्रा का वास्तविक उद्देश्य प्रकट करते हैं, तथा यहीं से अध्याय का असली विषय आरम्भ होता है। वे कर्दम से एक ऐसे अनुरोध के प्रति कृपापूर्ण ध्यान की याचना करते हैं जो एक पिता के गहनतम स्नेह से व्याकुल है: उनकी पुत्री देवहूति, प्रियव्रत तथा उत्तानपाद की बहन, उस आयु तक पहुँच चुकी है जहाँ वह अपनी आयु, चरित्र तथा सद्गुणों के योग्य एक वर की खोज में है। तथा — मनु बताते हैं, अपनी पुत्री की स्वयं की इच्छा-स्वतन्त्रता पर मानो पिता के शान्त विस्मय के भाव से — जिस क्षण उसने ऋषि नारद से कर्दम के उदात्त चरित्र, विद्या, यौवन-सौन्दर्य तथा अन्य गुणों का वर्णन सुना, उसने अपना हृदय उन्हीं पर, केवल उन्हीं पर स्थिर कर दिया। यह विवरण महत्त्वपूर्ण है: देवहूति का स्नेह शून्य से उस पर थोपा नहीं गया है; यह उसकी अपनी प्रतिक्रिया है जो उसने पहले ही सुना था, तथा मनु यहाँ केवल उस निर्णय को औपचारिक प्रस्ताव के रूप में आगे बढ़ा रहे हैं।

मनु अपने पक्ष को एक ऐसे तर्क से आगे बढ़ाते हैं जिसका भागवत के जगत् में वास्तविक नैतिक भार है। वे कर्दम से स्पष्ट कहते हैं कि उसे स्वीकार करें, क्योंकि वे उसे पूर्ण श्रद्धा के साथ अर्पित कर रहे हैं तथा क्योंकि वह प्रत्येक दृष्टि से गृहस्थ-जीवन में उनकी सहचरी बनने योग्य है। यह प्रशंसनीय नहीं है, मनु कहते हैं — यहाँ तक कि उस व्यक्ति के लिए भी नहीं जो सांसारिक आसक्ति से पूर्णतः मुक्त है, तथा उससे भी कम उसके लिए जो विषय-भोगों के प्रति कुछ रुचि रखता है — कि वह स्वयं आए हुए वांछनीय वस्तु को अस्वीकार करे। इससे भी बुरा, जो स्वतन्त्र रूप से दिए गए को अस्वीकार करके किसी कृपण स्रोत से उसकी याचना करता है, वह अपनी सम्पूर्ण प्रतिष्ठा खो देता है, तथा दूसरों के अनादरपूर्ण व्यवहार से उसका अभिमान चूर हो जाता है। मनु अपनी प्रार्थना का समापन एक हल्के-फुल्के छेड़ने के भाव से करते हैं: उन्होंने सुना है, वे कहते हैं, कि कर्दम ने स्वयं विवाह की इच्छा व्यक्त की है, तथा चूँकि ऋषि ने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत नहीं लिया है, अतः अब इतनी सच्ची भावना से अर्पित हो रहे हाथ को स्वीकार करने में निश्चय ही कोई वास्तविक बाधा नहीं हो सकती।



मनु अपनी यात्रा का वास्तविक उद्देश्य प्रकट करते हैं — ऋषि के समक्ष अपनी पुत्री देवहूति के पाणिग्रहण का औपचारिक प्रस्ताव, यह बताते हुए कि उसने स्वयं ही नारद ऋषि से कर्दम के गुणों के विषय में सुनकर उन पर अपना हृदय स्थिर कर लिया था (श्लोक 8-14)।

ऋषि की शर्तें, तथा एक मुग्ध हृदय

कर्दम का उत्तर कृपापूर्ण, स्पष्ट तथा — भागवत ने अब तक उन्हें जिस चरित्र का दिखाया है उसके अनुरूप — मात्र परिस्थितिवश बहकने के बजाय सावधानीपूर्वक विचारा हुआ है। हाँ, वे स्पष्ट कहते हैं, उनकी सचमुच विवाह की इच्छा है, तथा चूँकि देवहूति अभी किसी अन्य को वचनबद्ध नहीं की गई है, अतः ब्रह्म-विधि से — शास्त्रों में सर्वश्रेष्ठ मानी गई विवाह-पद्धति — उनका मिलन पूर्णतः उपयुक्त होगा। फिर वे देवहूति की स्वयं ऐसे शब्दों में प्रशंसा करते हैं जो उसे परम्परा की महान् नारियों में दृढ़ता से स्थापित करते हैं: इतनी तेजोमयी, वे कहते हैं, कि उसका अपना स्वाभाविक तेज उसके पहने हुए आभूषणों की चमक को भी मात दे देता है; इतनी मोहक कि एक बार, जब वह अपने राजप्रासाद के शिखर पर क्रीड़ा कर रही थी, विश्वावसु नामक एक गन्धर्व, जो अपने सौन्दर्य के लिए विख्यात था, उसे देखकर इतना मोहित हो गया कि अपने ही आकाशीय रथ से गिर पड़ा। कर्दम पूछते हैं, ऐसी स्त्री का स्वागत कौन बुद्धिमान् व्यक्ति नहीं करेगा — स्वयं मनु की प्रिय पुत्री, उत्तानपाद की बहन, जिसे वे भी नहीं देख सकते जिन्होंने भगवान् के चरणों की आराधना नहीं की, तथा जो स्वयं अपनी इच्छा से मेरा हाथ माँगने आई है?

परन्तु कर्दम बिना शर्त स्वीकार नहीं करते, तथा उनकी शर्त ही इस सम्पूर्ण प्रसंग का धार्मिक हृदय है। वे देवहूति को अपनी पत्नी के रूप में तभी तक ग्रहण करेंगे, वे कहते हैं, जब तक वह उनके द्वारा अपने ही आध्यात्मिक तेज का एक अंश गर्भ में धारण न कर ले — इसके पश्चात् वे लगभग पूर्णतः संन्यास की साधनाओं की ओर मुड़ने का विचार रखते हैं, वे अहिंसक अनुशासन जो एक सच्चे संन्यासी के जीवन को चिह्नित करते हैं, तथा जो उन्हें स्वयं भगवान् द्वारा प्रत्यक्ष रूप से सिखाए गए हैं।

अतो भजिष्ये समयेन साध्वीं
यावत्तेजो बिभृयादात्मनो मे ।
अतो धर्मान् पारमहंस्यमुख्यान्
शुक्लप्रोक्तान् बहु मन्येऽविहिंसान् ॥ १९ ॥

*ato bhajiṣye samayena sādhvīm yāvat tejo bibhṛyād ātmano me ato dharmān pāramahaṃsya-
mukhyān śukla-proktān bahu manye 'vihimśrān*

अर्थ: “मैं इस सती-साध्वी नारी से इसी एक शर्त पर जुड़ूँगा — कि वह मेरे ही माध्यम से मेरे स्वयं के आन्तरिक तेज का एक अंश धारण करे; उसके पश्चात् मैं केवल परमहंस के उन्हीं प्रमुख, अहिंसक कर्तव्यों को महत्त्व दूँगा जिन्हें स्वयं तेजस्वी भगवान् ने उपदिष्ट किया है।” (स्कन्ध 3, अध्याय 22, श्लोक 19)

इस विषय में उनके लिए सर्वोच्च प्रमाण, वे स्पष्ट कहते हैं, अमर भगवान् श्रीहरि के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं, जो समस्त प्रजापतियों (सृष्टि-प्रभुओं) के भी शासक हैं, जिनसे यह अद्भुत ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है, जिसमें वह अब स्थित है, तथा जिसमें वह पुनः विलीन हो जाएगा। यहाँ कर्दम द्वारा कहा गया “अपने ही आध्यात्मिक तेज का एक अंश” भगवान् कपिल का प्रत्यक्ष पूर्वाभास है — वह महान् आचार्य-अवतार जिनका कर्दम तथा देवहूति के गर्भ से जन्म तृतीय स्कन्ध के इस भाग की पराकाष्ठा बनेगा। इस अध्याय में सम्पन्न हो रहा यह विवाह, दूसरे शब्दों में, कोई साधारण गार्हस्थ्य विषय नहीं है; यह एक ऐसे दिव्य अवतरण का व्यवस्थित मिलन-बिन्दु है जो अभी कई अध्याय दूर है।

इतना कह चुकने के पश्चात्, कर्दम मौन हो जाते हैं — उनका मन, मैत्रेय कहते हैं, पूर्णतः उस भगवान् से चिपटा हुआ है जिनकी नाभि में कमल सुशोभित है। तथा यह इसी मौन में, इसी अन्तर्मुखी लीनता में, अध्याय का सबसे कोमलतम मानवीय क्षण घटित होता है: उनका मुखमण्डल, एक स्निग्ध मुस्कान से सुशोभित, देवहूति के हृदय को मोह लेता है, जो स्पष्टतः इस सम्पूर्ण वार्तालाप के दौरान उपस्थित रहकर सुन रही थी।

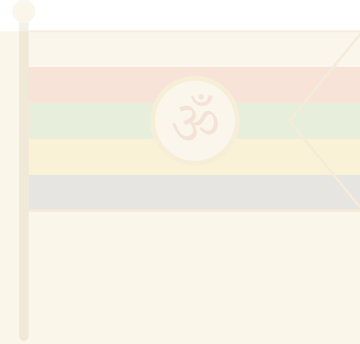
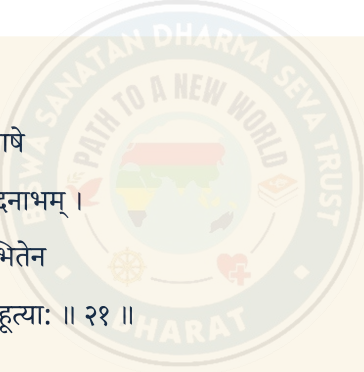
मैत्रेय उवाच

स उग्रधन्वन्नियदेवाबभाषे

आसीच्च तूष्णीमरविन्दनाभम् ।

धियोपगृह्णन् स्मितशोभितेन

मुखेन चेतो लुलुभे देवहूत्याः ॥ २१ ॥



*maitreya uvāca sa ugra-dhanvann iyad evābabhāṣe āsīc ca tūṣṇīm aravinda-nābham
dhiyopagṛhṇan smita-śobhitena mukhena ceto lulubhe devahūtyāḥ*

अर्थ: “श्री मैत्रेय ने कहा: महाधनुर्धर विदुर से इतना ही कहकर ऋषि मौन हो गए, उनका चित्त पूर्णतः कमल-नाभि भगवान् में स्थिर हो गया; तथा वह मौन ही था, जो उनके मुख पर सुशोभित मृदु मुस्कान से युक्त होकर, देवहूति के हृदय को चुरा ले गया।” (स्कन्ध 3, अध्याय 22, श्लोक 21)

भागवत इसे जिस प्रकार प्रस्तुत करता है उसमें कुछ शान्त रूप से उल्लेखनीय है: ऋषि का सबसे आकर्षक गुण, ठीक उसी क्षण जब उनकी वधू का हृदय पूर्णतः उनकी ओर मुड़ता है, कोई वाक्पटुता या सद्गुण का प्रदर्शन नहीं, अपितु मात्र उनकी स्मृतिमय, भगवद्-लीन स्थिरता है।



कईम एक शर्त पर देवहूति का पाणिग्रहण स्वीकार करते हैं — कि वे तभी तक गृहस्थ रहेंगे जब तक वह उनके आध्यात्मिक तेज के एक अंश को धारण न कर ले — तथा फिर मौन हो जाते हैं, उनका मन कमल-नाभि भगवान् में लीन; यही स्थिरता देवहूति के हृदय को मोह लेती है (श्लोक 15-21)।

दोनों कुलों द्वारा आशीर्वादित एक विवाह

दोनों पक्षों के हृदय अब स्पष्टतः एकमत हो चुके हैं, अतः मनु अब और विलम्ब नहीं करते। अपनी महारानी तथा अपनी पुत्री, दोनों के मन में पहले ही स्थिर हो चुके निर्णय को स्पष्ट देखकर, सम्राट् अत्यन्त प्रसन्नता से देवहूति को ऋषि को अर्पित कर देते हैं — एक ऐसा मिलन, मैत्रेय कहते हैं, जिसमें दोनों सद्गुणों में एक-दूसरे के सर्वथा उपयुक्त हैं। महारानी शतरूपा अपनी ओर से वधू तथा वर दोनों को अवसर के अनुकूल बहुमूल्य विवाह-उपहार — आभूषण, उत्तम वस्त्र तथा गृहस्थी के लिए अन्य वस्तुएँ — प्रेमपूर्वक भेंट करती हैं। यह दोनों ओर से पूर्ण, अनारक्षित उत्सव का क्षण है, राजसी उदारता तथा तपस्वी गरिमा एक-दूसरे के साथ बिना किसी असंगति के मिलती हुई।

तथापि अध्याय इस क्षण को उसके मूल्य को दिखाए बिना नहीं जाने देता। अपनी पुत्री को इतने योग्य वर से जोड़कर राहत का अनुभव करते हुए भी, मनु स्वयं को उसी क्षण किसी भी प्रिय सन्तान को विदा करते समय होने वाले साधारण पितृ-शोक से अभिभूत होने से रोक नहीं पाते। वे देवहूति को अपनी बाँहों में समेट लेते हैं, उनका हृदय उस स्नेह से व्याकुल है जिसे वे अब और सम्भाल नहीं पा रहे, तथा — उससे बिछड़ने की सोच असह्य होने के कारण — बार-बार अश्रु बहाते हैं, अपने आँसुओं से पुत्री के मुख को भिगोते हुए, पुकारते हुए, “मेरी पुत्री, मेरी प्रिय सन्तान!” यह एक छोटा किन्तु गहन मानवीय विवरण है, तथा भागवत स्पष्टतः इसे अपनी गरिमा से तनिक भी नीचा नहीं मानता कि इसे अंकित न करे: उस नियति की पूर्ति के मध्य भी जो एक दिन स्वयं भगवान् को देवहूति के पुत्र के रूप में संसार में लाएगी, विवाह में पुत्री को खोने का एक पिता का साधारण दुःख अपने पूर्ण तथा निःसंकोच स्थान को पाता है।



अपनी महारानी तथा अपनी पुत्री दोनों की सहमति देखकर, मनु प्रसन्नतापूर्वक देवहूति का विवाह सम्पन्न करते हैं; महारानी शतरूपा दम्पति को विवाह-उपहारों से भर देती हैं, तथा मनु — पितृ-स्नेह से अभिभूत होकर — अपनी पुत्री को गले लगाते हैं तथा उससे बिछड़ने की सोच पर अश्रु बहाते हैं (श्लोक 22-25)।

बर्हिष्मती की ओर गृह-यात्रा

विवाह सम्पन्न होने के पश्चात्, मनु महान् ऋषि से विदा लेते हैं तथा, अपनी महारानी के साथ, गृह-यात्रा के लिए रथ पर आरूढ़ होते हैं, उनका परिवार पीछे-पीछे चलता है। उनका मार्ग उन्हें सरस्वती नदी के दोनों तटों से होकर ले जाता है, वह नदी जिसे पाठ ऋषियों के लिए विशेष रूप से प्रिय बताता है, तथा सम्राट् का दल मार्ग में शान्त-चित्त ऋषियों के सुन्दर आश्रमों को निहारते हुए आगे बढ़ता है — एक यात्रा के लिए एक उपयुक्त समापन-दृश्य जो, आखिरकार, एक ऐसे ही आश्रम से आरम्भ हुई थी। सम्राट् के आगमन का समाचार उनसे पहले ही पहुँच जाता है, तथा उनकी प्रजा, अत्यन्त प्रसन्न होकर, ब्रह्मवर्त से बाहर निकलकर गीतों, स्तुतियों तथा वाद्य-संगीत के साथ अपने लौटते हुए स्वामी का स्वागत करने आती है।

उनका गन्तव्य बर्हिष्मती है, मनु की अपनी राजधानी, जिसे यहाँ प्रत्येक प्रकार के वैभव से समृद्ध बताया गया है — तथा भागवत यहाँ रुककर, इस व्युत्पत्तिपरक कथा के प्रति स्पष्ट रुचि के साथ, ठीक-ठीक बताता है कि इस नगर को यह नाम कैसे मिला। बहुत पहले, जब भगवान् विष्णु ने दिव्य वराह के रूप में अवतार लिया था तथा अपने महान् कार्य के दौरान अपने शरीर को झटका था, तब उनके शरीर से बाल पृथ्वी पर गिरे थे। वे ही बाल, पाठ हमें बताता है, सदा-हरित कुश घास — जिसे बर्हिस् भी कहा जाता है — तथा कास घास में परिवर्तित हो गए, वह नरकुल-सदृश पौधा जो आज भी चटाइयों तथा छतों के लिए प्रयुक्त होता है। इन्हीं पावन घासों के माध्यम से प्राचीन ऋषि उन (राक्षसों आदि) को दूर भगा सके जो उनके यज्ञों में विघ्न डालते थे, तथा इन्हीं घासों से उन्होंने उन यज्ञों के माध्यम से भगवान् विष्णु की उपासना की। यही, ठीक इसी स्थान पर, स्वयं पूज्य मनु ने एक बार कुश तथा कास घास का आसन बिछाकर यज्ञों के अधिष्ठाता भगवान् की आराधना की थी — वही भगवान् जिनसे उन्हें सम्पूर्ण पृथ्वी-मण्डल पर अपना अधिकार प्राप्त हुआ था। यह नगर, दूसरे शब्दों में, उसी घास के नाम पर है जिसके माध्यम से मनु का अपना राजसिक अधिकार सर्वप्रथम पवित्र हुआ था, तथा वह पवित्रता, अध्याय हमें सहज ही स्मरण कराता है, दिव्य वराह के गिरे हुए एक बाल तक जाती है।



मनु तथा उनकी महारानी पावन सरस्वती के तट-तट होते हुए, शान्त ऋषियों के आश्रमों को पार करते हुए, बर्हिष्मती की हर्षित प्रजा तक गृह-यात्रा करते हैं — एक ऐसा नगर जिसका नाम, अध्याय स्मरण कराता है, उस पावन कुश तथा कास घास से पड़ा जो भगवान् विष्णु के वराह-अवतार के गिरे हुए एक बाल से उत्पन्न हुई थी (श्लोक 26-31)।

संसार से अविचलित एक जीवन

अध्याय का अन्तिम भाग विवाह के तात्कालिक दृश्य से पीछे हटकर मनु के सम्पूर्ण शेष जीवन का एक सार-संक्षेप — लगभग एक लघु स्तुति — प्रस्तुत करता है। बर्हिष्मती स्थित अपने राजप्रासाद में पहुँचकर, मनु एक ऐसे घर में प्रवेश करते हैं जो, भागवत के अनुसार, तीनों प्रकार के क्लेशों को दूर भगाता था: वह जो अपने ही शरीर तथा मन से उत्पन्न होता है, वह जो दैवी अथवा प्राकृतिक कारणों से किसी के भी नियन्त्रण से परे उत्पन्न होता है, तथा वह जो अन्य प्राणियों द्वारा उत्पन्न किया जाता है। वहाँ, पत्नी तथा सन्तानों की संगति में, वे गृहस्थ-जीवन के उन उपयुक्त सुखों का आनन्द लेते हैं जो धर्म, अर्थ तथा मोक्ष की गहरी साधनाओं में बाधक नहीं होते — जबकि दैवी संगीतकार, हमें बताया जाता है, प्रतिदिन प्रातः अपनी पत्नियों सहित उनके यश का गान करते हैं। तथापि, भागवत स्पष्ट करता है कि मनु का अपना हृदय इस प्रशंसा की ओर नहीं, अपितु केवल श्रीहरि की कथाओं की ओर झुकता था, जिन्हें वे सच्चे प्रेमपूर्ण ध्यान से सुनते थे।

आगे जो आता है वह अध्याय के सबसे शान्त किन्तु सर्वाधिक उल्लेखनीय अवलोकनों में से एक है: यद्यपि स्वायम्भुव मनु, अपने ही स्वभाव तथा पद के कारण, विषय-भोगों की वस्तुएँ रचने की कला में स्वयं पारंगत थे — वे, आखिरकार, मानव-जाति के आदि-पिता तथा प्रथम सम्राट् थे — तथापि इनमें से कुछ भी उन्हें उनकी उदात्त, ध्यानस्थ मनःस्थिति से रस्ती भर भी नीचे नहीं खींच सका, इतने पूर्णतः वे भगवान् के प्रति समर्पित थे। उनका दीर्घ जीवन, जो एक सम्पूर्ण मन्वन्तर — चार युगों के इकहत्तर पूर्ण चक्र — तक फैला हुआ था, व्यर्थ नहीं बीता, अपितु भगवान् वासुदेव के साथ निरन्तर सम्बद्धता में बीता: उनके दिव्य स्वरूप का ध्यान, उनके नामों तथा महिमाओं का कीर्तन, उनकी प्रतिमाओं की उपासना, तथा केवल उनकी कथाओं को सुनना, चिन्तन करना, रचना करना तथा सुनाना। इस प्रकार तीनों गुणों को — जो सामान्यतः आत्मा की गति निर्धारित करते हैं — पार करके, मनु ने इस विशाल कालावधि को उस प्रकार जिया जिसे भागवत स्पष्टतः अनुकरणीय मानता है। मैत्रेय अध्याय का समापन विदुर से सीधे पूछे गए एक अलंकारिक प्रश्न से करते हैं: वास्तव में, शारीरिक अथवा मानसिक क्लेश, अथवा दैवी, मानवीय अथवा किसी अन्य स्रोत से उत्पन्न कोई भी पीड़ा, उस व्यक्ति को कैसे स्पर्श कर सकती है जिसने श्रीहरि की शरण ग्रहण कर ली हो?

शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः ।

भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरिसंश्रयम् ॥ ३७ ॥

śārīrā mānasā divyā vaiyāse ye ca mānuṣāḥ bhautikāś ca katham kleśā bādhante hari-samśrayam

अर्थ: कोई भी क्लेश — चाहे वह अपने ही शरीर से उठे, चाहे अदृश्य तथा दिव्य शक्तियों से आए, अथवा अन्य मनुष्यों तथा प्राणियों द्वारा उत्पन्न हो — उस आत्मा को कभी छू भी नहीं सकता जिसने भगवान् हरि की शरण ले ली हो। (स्कन्ध 3, अध्याय 22, श्लोक 37)

स्वयम्भुव मनु — प्रथम सम्राट्, समस्त प्राणियों के मित्र, उन ऋषियों के धर्मोपदेशक जिन्होंने एक बार उनसे प्रश्न किए थे — की अद्भुत कथा को इस प्रकार पूर्ण करने के पश्चात्, मैत्रेय अपने समापन-वचनों में आगे की ओर मुड़ते हैं: मनु की अपनी पुत्री देवहूति की महिमा की ओर, जिसकी पूर्ण कथा यह श्रृंखला अब आगे बढ़ाएगी।



यद्यपि मानव-जाति के प्रथम सम्राट् के रूप में प्रत्येक सांसारिक सुख के स्वामी थे, तथापि मनु अपना सम्पूर्ण मन्वन्तर — चार युगों के इकहत्तर चक्र — भगवान् वासुदेव के स्मरण से अविचलित होकर बिताते हैं, उनका जीवन विषय-भोग से अबाधित धर्म का एक आदर्श है (श्लोक 32-39)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. सच्चा सद्गुण प्रशंसा का उत्तर सारवत्ता से देता है, कृत्रिम विनम्रता से नहीं। कर्दम की प्रशंसा को मात्र टालने के बजाय, मनु ब्राह्मण-क्षत्रिय के पारस्परिक कर्तव्य पर एक विचारपूर्ण धार्मिक विवरण से उत्तर देते हैं — यह सिखाते हुए कि उचित रूप से किया गया विनम्र भाव संवाद को समाप्त नहीं करता, अपितु उसे गहराई देता है (श्लोक 2-4)।
2. स्वतन्त्र रूप से दिया गया उपहार कृत्रिम विरक्ति के कारण अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। कर्दम के समक्ष मनु का तर्क — कि बिना माँगे मिले उपहार को अस्वीकार करना दाता तथा ग्रहीता दोनों का अनादर करता है, तथा पहले से अर्पित वस्तु के लिए अन्यत्र याचना करना अपनी प्रतिष्ठा को नष्ट कर देता है — अनुग्रह को, चाहे वह मानवीय हो या दैवीय, कृत्रिम अभिमान के बजाय विनम्रता से ग्रहण करने की एक

व्यापक शिक्षा देता है (श्लोक 12-13)।

3. एक व्रत, चाहे वह कितना ही आनन्दमय क्यों न हो, तब सबसे सुदृढ़ होता है जब वह उच्चतर उद्देश्य पर सशर्त हो। कर्दम विवाह को अपने आप में साध्य के रूप में स्वीकार नहीं करते; वे इसे स्पष्ट रूप से एक उच्चतर आध्यात्मिक लक्ष्य की सेवा करने वाली एक अस्थायी अवस्था के रूप में प्रस्तुत करते हैं, संन्यास तथा भगवान् के अपने ही अधिकार को अपनी अन्तिम दिशा-सूचक बनाकर (श्लोक 19-20)।

4. आध्यात्मिक स्थिरता स्वयं में आकर्षण का एक रूप है। यह वाक्पटुता नहीं, अपितु भगवान् में कर्दम की मौन लीनता है जो देवहूति के हृदय को मोह लेती है — यह स्मरण कराते हुए कि भगवद्-चेतना, उचित रूप से धारण की गई, बिना किसी प्रदर्शन के बाहर की ओर विकीर्ण होती है (श्लोक 21)।

5. साधारण मानवीय प्रेम तथा आध्यात्मिक उद्देश्य परस्पर शत्रु नहीं हैं। अपनी पुत्री को विदा करते समय मनु के अनियन्त्रित अश्रु, उनके द्वारा अभी-अभी सम्पन्न किए गए विवाह के ब्रह्माण्डीय महत्त्व के ठीक साथ रखे गए, यह दिखाते हैं कि भागवत को अपनी सर्वाधिक उदात्त कथाओं में भी स्वाभाविक स्नेह को नकारने या दबाने में कोई रुचि नहीं है (श्लोक 24-25)।

6. संसार में पूर्णतः रत जीवन भी भगवान् के प्रति पूर्णतः समर्पित रह सकता है। मनु का उदाहरण — एक राजा, गृहस्थ तथा पिता जो फिर भी सम्पूर्ण मन्वन्तर श्रीहरि की कथाओं तथा उपासना में लीन होकर बिताता है — भक्ति का एक ऐसा प्रतिमान प्रस्तुत करता है जिसे सांसारिक कर्तव्य से हटने की नहीं, अपितु उसके भीतर सही प्राथमिकता की आवश्यकता होती है (श्लोक 33-37)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय के पवित्र को गार्हस्थ्य से अलग न करने के ढंग में एक विशेष कृपा है। यहाँ एक ब्रह्माण्डीय घटना शान्तिपूर्वक गति में लाई जा रही है — वह विवाह जो समय आने पर भगवान् कपिल को संसार में लाएगा — तथापि अध्याय अपने उतने ही ध्यान को एक पिता के अश्रुओं, एक माता के विवाह-उपहारों, तथा एक युवती के हृदय के एक मुस्कान से जीत लिए जाने पर भी लगाता है जितना धर्मशास्त्र या नियति पर। यहाँ कुछ भी मानवीय होने के कारण छोटा प्रतीत नहीं होता। अपनी पुत्री के प्रस्थान पर मनु का शोक अध्याय के व्यापक उद्देश्य से प्रतिस्पर्धा नहीं करता; यह केवल उसके साथ-साथ, अपने ही अधिकार में सम्मानित होकर, स्थित रहता है। तथा कर्दम, अपनी ओर से, दिखाते हैं कि उच्चतम सम्भव लक्ष्य — एक दिव्य आचार्य के जन्म — के प्रति लिया गया व्रत भी शीतल या मात्र लेन-देन जैसा नहीं होना चाहिए; वे अपनी शर्त का उल्लेख करने से पहले देवहूति के सौन्दर्य तथा गुणों की सच्ची उष्मा से प्रशंसा करते हैं। सम्भवतः यही इस अध्याय की शान्त शिक्षा है: कि पवित्र तथा कोमल दो भिन्न स्वर नहीं हैं जो हमारे ध्यान के लिए प्रतिस्पर्धा कर रहे हों, अपितु एक ही धारा है, जो एक साथ एक पिता के आलिंगन में, एक ऋषि के मौन में, तथा एक कहीं बड़ी दिव्य योजना की धीमी गति में प्रवाहित होती है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, जब आप अपनी किसी प्रिय वस्तु को त्यागते हुए पाएँ — अपना समय, अपना प्रयास, किसी प्रियजन की स्वतन्त्रता, अथवा केवल एक योजना जिसे आपने दृढ़ता से थामा हुआ था — देखें कि क्या आप उसे, मनु के समान, न तो कृत्रिम विरक्ति से और न ही अनिच्छापूर्ण खिन्नता से अर्पित कर सकते हैं। जो भी शोक या आसक्ति वास्तव में उपस्थित है, उसे अनुभव करने दें, ठीक जैसे मनु ने अपनी पुत्री के उत्तम विवाह पर हर्षित होते हुए भी अश्रु बहाए; एक ऐसी शान्ति का अभिनय करने की आवश्यकता नहीं जिसे आप अनुभव नहीं करते। परन्तु वह अर्पण, जो भी

हो, उसी भाव में किया जाए जो कर्दम इसे स्वीकार करते समय दिखाते हैं: कृतज्ञतापूर्वक, विचारपूर्वक, तथा सदैव क्षण से बड़े किसी उद्देश्य की सेवा में। अपना अर्पण करने से पहले, रुककर शान्तिपूर्वक दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” इस स्मरण को आपको स्थिर करने दें, जैसे इसने कर्दम को उनके मौन में स्थिर किया, ताकि आप जो कुछ भी त्यागें वह मात्र छोड़ा हुआ न रहे, अपितु भगवान् की ओर अर्पित हो जाए।

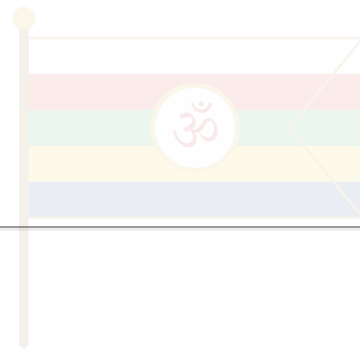
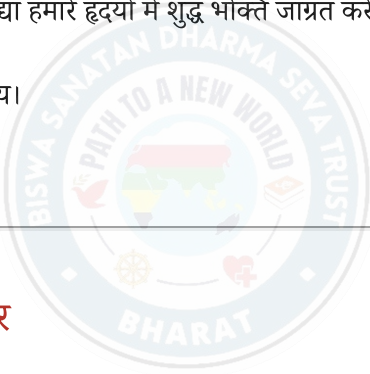
उपसंहार

तृतीय पुस्तक का द्वाविंश अध्याय, अपने ऊपरी स्तर पर, एक विवाह-अध्याय है — औपचारिक वचनों, उदार उपहारों, अश्रुपूर्ण विदाइयों तथा एक हर्षित गृहागमन से परिपूर्ण। परन्तु उस सतह के नीचे, यह कुछ कहीं बड़ा कर रहा है: यह शान्तिपूर्वक उस गृहस्थी की रचना कर रहा है जिसमें सांख्य-दर्शन के महान् आचार्य भगवान् कपिल शीघ्र ही जन्म लेंगे, तथा यह उन पात्रों के माध्यम से कर रहा है जिन्हें भागवत स्पष्टतः उनके अपने ही अधिकार में सराहनीय बनाना चाहता है — एक ऋषि जिसकी विवाह की शर्त स्वयं भक्ति का एक कार्य है, एक राजकुमारी जिसका हृदय बिना किसी बाध्यता के बुद्धिमत्तापूर्वक चुनता है, तथा एक राजा जिसका कर्तव्य-धर्मशास्त्र उसी श्वास में उसकी पुत्री के प्रति अनियन्त्रित प्रेम से मेल खाता है। इस अध्याय में कुछ भी शीघ्रतापूर्ण प्रतीत नहीं होता, तथा इसमें कुछ भी केवल क्रियात्मक प्रतीत नहीं होता। भागवत यहाँ अपना समय लेता है, जैसा वह प्रायः करता है, यह विश्वास करते हुए कि सबसे छोटे मानवीय विवरण — एक मुस्कान, एक अश्रु, एक विवाह-उपहार — वे ठीक वही स्थान हैं जहाँ दिव्य योजना स्वयं को दृश्यमान बनाना चुनती है।

श्रीमद्भागवत की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।



सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), तृतीय पुस्तक, बाईसवाँ प्रवचन, आन्तरिक पृष्ठ 234–237।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust.
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र की आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें स्रोत-श्लोकों को विस्तार से उद्धृत करने के बजाय संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा भाष्य की प्रतिलिपि नहीं है। किसी भी प्रकाशक के साथ कोई सम्बद्धता अथवा समर्थन निहित नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-3-chapter-22-kardama-accepts-devahuti.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

